Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VII, Issue No. XIV, April-2014, ISSN 2230-7540

सर्वपल्ली राधाकृष्णन का आध्यात्मिक मानववाद

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. VII, Issue No. XIV, April-2014, ISSN 2230-7540

सर्वपल्ली राधाकृष्णन का आध्यात्मिक मानववाद

Anju Saxena

Research Scholar, Sainath University, Ranchi, Jharkhand

सार :– *परिवर्तन प्रकृति का अटूट नियम है। प्रकृति प्रदत्त भौतिक एवं मूर्त वस्तुएं तो परिवर्तित होती ही रहती हैं साथ–साथ मानव के विचार, दृष्टिकोण, चिंतन एवं दर्शन भी परिवर्तित होते हैं। दर्शन का इतिहास इस परम् सत्य का साक्षी है कि मानवीय समस्याआ के साथ–साथ उनसे सम्बन्धित दार्शनिक विवेचन भी बदलते रहे हैं। इन परिवर्तनों ने नई परिस्थितिया से उत्पन्न चुनौतिया का सामना करने में मनुष्यों की सहायता की है। निसन्देह एक दार्शनिक के खोज का विषय सत्य का उद्घाटन है। अरविन्द के अनुसार ''एक बार पहचाने गये सत्य को हमारे आन्तरिक जीवन और बाहरी क्रियाआ में साक्षात्कार के योग्य होना चाहिए। यदि वह ऐसा नह° है तो उसका बौद्धिक महत्व तो हो सकता है परन्तु सर्वांग महत्व नह° हो सकता।'' समकालीन युग म मानववादी दर्शन ने भी मानव जीवन के सभी क्षेत्रा को प्रभावित किया है। जान डीवी के शब्दा में– ''दर्शन संस्कृति म परिवर्तन करता है। भावी चिन्तन और कर्म के प्रतिमान निश्चित करके वह सभ्यता के इतिहास म सार्थक और परिवर्तनशील योगदान देता रहता है।*

----------X----------

प्रस्तावना :–

राधाकृष्णन का जन्म मद्रास (चेन्नई) से 40 मील दूर उत्तर–पश्चिम की ओर स्थित तीरूतनी नामक एक छोटे से कस्बे में 5 सितम्बर 1888 को हुआ था। उनका प्रारम्भिक जीवन तीरूतनी तथा तीरूपटी में व्यतीत हुआ। ये दोनों स्थान तीर्थ–स्थल के रूप में प्रसिद्ध थे। शायद इसी प्रारम्भिक प्रभाव के फलस्वरूप उनकी अभिरूचि धर्म के प्रति बढ़ी। वे स्वयं स्वीकारते हैं कि उसी समय में उनके मन में अदृश्य जगत की वास्तविकता के प्रति एक दृढ़ विश्वास उत्पन्न हुआ– जो विश्वास सदैव उनकी आस्था का अंग बना रहा। उनकी स्कूल तथा कालेज की शिक्षा ईसाई मिशन की संस्थाओं में हुई। इस अवधि में वे ईसाई धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों से परिचित हो गए और साथ–साथ उन्हें यह भी जानकारी मिल गई कि ईसाई मत के समर्थक किन स्थलों पर हिन्दू मत की आलोचना करते हैं। इस प्रभाव में उन्होंने हिन्दू दर्शन तथा हिन्दू धर्म ग्रन्थों का विशद एवं गहन अध्ययन किया। अचेतन रूप में उनके मन में हिन्दू मत के विवेकानन्द जैसे प्रबल प्रतिपादकों के लिये बड़ा आदर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उनकी प्रारम्भिक धार्मिक प्रवृत्तियां इन विभिन्न प्रभावों के फलस्वरूप संवरती चली गय°। इस प्रकृति का अभिव्यक्ति के रूप में उनका लेखन कार्य बीस वर्ष की उम्र से ही प्रारम्भ हो गया था। 1908 में उनकी पहली पुस्तक ष्म्जीपबे वि जीम टमकंदजंष प्रकाशित हुयी। एम०ए० की परीक्षा के लिये उन्होंने इसे शोध–लेख के रूप में लिखा था।

1909 में मद्रास प्रेसिडेन्सी कालेज में उनकी बहाली एक शिक्षक के रूप में हुई, और उसी समयसे उनका बौद्धिक कार्य पूर्ण सक्रियता से प्रारम्भ हो गया। 1918 में उन्हें मैसूर विश्वविद्यालय में दर्शन का प्राचार्य का पद मिला, जहाँ उन्हें पाश्चात्य दर्शन के विशद अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ। उस काल में प्रकाशित उनके लेख तुलनात्मक दृष्टि से लिखे गए थे। 1921 में उनकी नियुक्ति दर्शन के क्षेत्र में देश के सर्वप्रथम पद पर हुर्यी, अर्थात वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में दर्शन के जार्ज–ट प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए। 1926 में उन्हें हिन्दू जीवन दर्शन पर भाषण देने के लिए आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का आमंत्रण प्राप्त हुआ, और उसके बाद तो विदेशों में भाषण एवं शैक्षणिक पद संभालने के अनेक आमंत्रण मिलते रहे। इसी काल में कुछ अन्य प्रमुख व्यक्तियों के सहयोग से उन्होंने 'इन्डियन फिलॉसफिकल कांग्रेस' की स्थापना की।

अब भारत के सर्वप्रथम बुद्धिजीवी के रूप में उनकी ख्याति फैल चुकी थी। भारतीय दर्शन एवं धर्म के क्षेत्र में उनका गहन ज्ञान, साथ–साथ पाश्चात्य दर्शन एवं विचारों की व्यापक जानकारी तथा इन दोनों की तुलना एवं समीक्षा के आधार पर दार्शनिक संरचना का इनका सतत् प्रयत्न उन्हें पूर्व तथा पश्चिम के बीच सेतु बनाने वाला एकमात्र चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित करता गया। साथ–साथ उनकी एक और विशिष्टता भी उनके प्रभाव एवं प्रसिद्धि का एक उपकरण बनी रही। वे बड़े प्रभावशाली वक्ता थे। इन सभी प्रभावों के फलस्वरूप उनकी प्रसिद्धि देश–विदेश में पूर्णतया व्यापक हो गई और उन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के स्पालडिंग प्रोफेसर का पद सम्भालने का आमंत्रण मिला।

दार्शनिक पृष्ठभूमि :–

यह सर्वविदित है कि राधाकृष्णन को भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों विचारों की पूरी जानकारी थी। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा भारतीय परम्परा के अनुरूप हुयी तथा बाद में अपनी लगन से उन्होंने पाश्चात्य विचारों का विशद अध्ययन किया। अतः उनके लिए बड़ा सरल हो गया कि इन दोनों विचारों के समन्वय का प्रयास करें। फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि उनकी बौद्धिक मान्यताओं की जड़ें भारतीय परम्परा में ही पनपी हैं। उनके अपने दार्शनिक विचारों की मूल अवधारणाएं सामान्यतः भारतीय दर्शनों से तथा प्रधानतः वेदान्त से ली हुयी है। किन्तु उनकी विशेषता यह रही कि भारतीय विचारों को भी स्पष्ट रूप में पाश्चात्य विचारों के माडलों एवं भाषीय ढंगों में व्यक्त किया। फलतः भारतीय दर्शन का उनके द्वारा प्रस्तुत इतिहास अपने परम्परिक बंधनों से मुक्त हो, नवीन रूप में प्रदत्त हुआ। यह मौलिकता भी उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुयी। जोड़ ने राधाकृष्णन की दार्शनिक दृष्टि का विवरण करते हुए

www.ignited.in

कहा है कि राधाकृष्णन को एक प्रकार से पूर्व तथा पश्चिम के बीच का 'सम्पर्क अधिकारी' कहा जा सकता है। उन्होंने पूर्व के पारम्परिक ज्ञान तथा पश्चिम के नवीन ज्ञान के मध्य एक सेतु बनाया है। इस विवरण में तथ्य है क्योंकि राधाकृष्णन का सतत् प्रयत्न रहा है कि वे इन दोनों विचारों के समन्वय के आधार पर दार्शनिक संरचना करें।

ऐसा प्रतीत होता है कि राधाकृष्णन को चेतना की वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के फलस्वरूप आधुनिक जीवन यंत्रतवत जीवन हो गया है, फलतः मानव की आत्मभूति शक्तिकुंठित हो गई हो। इसी कारण आधुनिकता का मानस जगत–जगत प्रक्रिया के इस आदर्श स्वरूप की उपेक्षा कर देता है। अतः उन्हें प्रतीत होता है कि अभी सर्वाधिक आवश्यकता आत्म को जगाने की है, आध्यात्मिक आस्था को पुनः प्रतिष्ठित करने की है। अतः उनके दर्शन का लक्ष्य एक ओर विवरणात्मक तथा दूसरी ओर मूल्यात्मक एवं आदर्शात्मक है। विवरणात्मक पक्ष में वे यथाशक्ति यह स्थापित करना चाहते हैं कि जीवन तथा जगत की वास्तविकता एवं सार्थकता आध्यात्मिकता में है। अपनी आदर्शमूलक अनुशंसा में से यह दिखाना चाहते हैं कि जब तक मानव की आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत नहीं होती है, तब तक मानव जीवन दिशाहीन, निरर्थक एवं अशुभ ही प्रतीत होता है। इस प्रकार आध्यात्मिक मूल्यों एवं आध्यात्मिकता को चरम बनाने के प्रयत्न में राधाकृष्णन किसी–किसी स्थल पर रहस्यवादी ;डलेजपबद्ध भी प्रतीत होते हैं, किन्तु उनका दर्शन रहस्यवादी नहीं है– रहस्यवाद का दर्शन नहीं है। रहस्यवाद के अंश का प्रवेश उनके दर्शन में कुछ उसी रूप में हो गया है– जिस रूप में हर आदर्शवादी एकवाद में प्रवेश कर जाता ळें

आध्यात्मिक मानववादः–

राधाकृष्णन के मानववादी विचार को समझने के लिये प्रारम्भ में ही दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रथमतः तो यह स्पष्ट है कि उनका मानववाद भारतीय विचार परम्परा के अनुकूल ही है। किन्तु इस विश्वास के साथ उन्हें मानव की वर्तमान स्थिति–मानव–अस्तित्व विधाओं की भी स्पष्ट अवगति है। अतः उनके मानववाद की दूसरी विशेषता है कि वे यह भी समझते हैं कि आध्यात्मिकता पर बल देने का यह अर्थ नहीं है कि मानव की भौतिक, जैविक, तथा मानसिक वृत्तियों की सर्वथा उपेक्षा हो जाये। उनकी यह धारणा मानव की आधुनिक अस्तित्वमूलक विधाओं की स्पष्ट अनुभूति के कारण और दृढ़ हो जाती है। सामान्यतः मानव मनोवैज्ञानिक–भौतिक मानव होता है, जिसके जीवन में सहज वृत्तियां, इच्छाएं, प्रयोजन आदि का प्रबल महत्व रहता है। यदि मानव सम्बन्धी कोई विचार इनकी ओर ध्यान नहीं देता है तो वह विचार ही वास्तविकता से हटा प्रतीत होता है। इस प्रकार राधाकृष्णन को लगता है कि मानव एक विचित्र मिश्रण है– भौतिक तथा अभौतिक तत्वों का स्वार्थमूलकता तथा आत्मोत्सर्गता की प्रवृत्तियों का, स्वार्थ और सार्वभौम प्रेम का। मानव सम्बन्धी हर विचार को, और इसलिये राधाकृष्णन के आत्म–विचार को भी मानव के इस विचित्र स्वरूप पर ध्यान रखते हुए रूप लेना आवश्यक हो जाता है।

ज्ञानोपार्जन के विभिन्न ढंगः–

राधाकृष्णन के दर्शन का एक अंश उनकी ज्ञान मिमांसा भी है। अपनी ज्ञानमिमांसा में वे मूलतः एक ही ज्ञानमीमांसीय समस्या पर प्रकाश डालते हैं और वह समस्या है 'ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न ढंगों की समस्या'। उनके लिये यह समस्या केन्द्रीय है तथा बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके महत्वपूर्ण बन जाने का एक कारण तो यह है कि दार्शनिक चिंतन के इतिहास में ही यह समस्या महत्वपूर्ण रही है। उनके अनुसार ज्ञानोपार्जन के तीन ढंग सम्भव हैं–

(क) इन्द्रिय अनुभव (Sense Experience)

(ख) बौद्धिक अवगति (Intellectual cognition)

(ग) अन्तर्दृष्टि (Intuitive Apprehension)

(क) इन्द्रिय अनुभव (Sense Experience)– राधाकृष्णन सत्–ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान मानते हैं, और इसके लिये इन्द्रिय अनुभव तथा बौद्धिकता को यथेष्ट नहीं मानते। वे कहते हैं कि इन्द्रिय अनुभव से तो मात्र वस्तुओं के वाह्य–पक्ष की जानकारी मिलती है। उदाहरणतः हम यदि एक गुलाब देखते हैं, तो इन्द्रियां इसके रंग, इसके आकार, इसके गंध आदि को तो पकड़ पाती हैं, किन्तु गुलाब के सार रूप को नहीं जान पातीं। ये सभी लक्षण वस्तु के वाह्य–धरातली लक्षण हैं– उसकी वास्तविकता नहीं। तो इन्द्रियों की स्पष्ट अयथेष्टता इस तथ्य में है कि वे विषय के सार–रूप को पकड़ने में असमर्थ हैं।

इन्द्रियों में यह भी कमी है कि उनपर सदा विश्वास भी नहीं किया जा सकता। वे अक्सर धोखा देती हैं। भ्रम या भ्रान्ति तो इसी कारण उत्पन्न होते हैं कि हम ज्ञानेन्द्रियों पर विश्वास कर अग्रसर होते हैं जबकि वास्तविकता वैसी नहीं है जैसा कि इन्द्रियों से ज्ञात होता है। तो इससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि उन पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता, और यह भी इनकी अयथेष्ठता है।

(ख) बौद्धिक अवगति (Intellectual cognition)– राधाकृष्णन के अनुसार बौद्धिक अवगति सत्–ज्ञान के लिये अयथेष्ट निम्नलिखित कारणों के आधार पर सिद्ध होता है। (क) बौद्धिक अवगति ज्ञाता तथा श्रेय विषयी एवं विषय आदि के द्वैत की पूर्वमान्यता पर आधृत रहती है। अतः जो अद्वैत है, पूर्णरूपेण 'एक' है–– उसका ज्ञान इस माध्यम से संभव नहीं हो सकता। बौद्धिकता पृथकता के विश्लेषण कर उसे फिर से जोड़ने का प्रयास करती है– सत्–ज्ञान का यह ढंग नहीं हो सकता। (ख) बौद्धिकता सम्बन्धों के विश्लेषण के द्वारा अपना कार्य करती है। सम्बन्ध अनेकता के आधार पर ही मान्य होता है, सम्बन्धों को देखने का अर्थ है कि अनेकता को मानकर चलना। किन्तु 'परम–सत्' तो एक है– अनेकता से परे है। तो जो ढंग सम्बन्धों के विश्लेषण पर एवं अनेकता की मान्यता पर आधारित है– वह उस सत् के ज्ञान के लिये समर्थ नहीं हो सकता। (ग) बौद्धिकता प्रतीकों के माध्यम से कार्य करती है– अतः वह प्रतीक जगत तक ही सीमित है। किन्तु, सत् के ज्ञान के लिये तो प्रतीक–जगत से उपर उठ 'उस' तक पहुॅचना जिसे प्रतीक सूचित करने का प्रयास करते हैं। (घ) बुद्धि अपने कार्य में पहले इन्द्रियों से प्राप्त भाव 'अस्तित्वमूलक तत्व' एवं 'विषयवस्तु–मूलक तत्व' में भेद करता है– उसके 'होने' (जीम जींज) तथा 'उसमें क्या है' (जीम ूींज) में भेद करता है, और तब एक प्रकार के बौद्धिक संश्लेषण के द्वारा उन्हें पुनः संयोजित करने की चेष्टा करता है। किन्तु यह तो मानना ही पड़ता है कि यह बौद्धिक संश्लेषण चाहे जितना ही पूर्ण होने का प्रयास करे, सत् के मौलिक एकरूपता को पकड़ने में समर्थ नहीं हो सकती ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गहराई से कटे हुए घाव के जुड़ने पर भी त्वचा की मौलिक चिकनाई कभी नहीं उभर सकती। (ड) बुद्धि तो परोक्ष ज्ञान देती है– क्योंकि यह इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त सामग्री पर काम करती है। अतः इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान अंततः वैसी सामग्री पर निर्भर है जिनकी प्राप्ति इन्द्रिय जैसे स्रोतों पर निर्भर है। इस प्रकार के माध्यम से

www.ignited.in

सत् ज्ञान सम्भव नहीं है। (च) बौद्धिकता की यथेष्टता इस तथ्य से भी झलकती है कि हमारा मानस जगत बौद्धिकता तक ही सीमित है। हमारी मानसिकता के अंग बौद्धकता के अतिरिक्त भावनात्मकता तथा संकल्पनात्मकता आदि भी है; सत् का ज्ञान तो तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण मानसिकता उस ओर पूरी शक्ति से उन्मुख हो।

(ग) अन्तर्दृष्टि (Intuitive Apprehension)– अब यदि इन्द्रिय अनुभव तथा बौद्धिकता अवगति सत्–ज्ञान के लिये अथयेष्ट है, तो आवश्यकता है उस ज्ञान के स्रोत के स्वरूप की समझ की जिसके द्वारा सत्–ज्ञान सम्भव हो सके। ज्ञान के इस मार्ग को राधाकृष्णन 'अन्तर्दृष्टि' (Intuitive Apprehession) कहते हैं।

पाठ्यक्रमः–

प्रकृतिवाद पाठ्यक्रम के निर्माण में बालक के वर्तमान अनुभव को ही सब कुछ मानता है। परन्तु राधाकृष्णन जैसे आदर्शवादी दार्शनिक के अनुसार बालक के लिये केवल वर्तमान अनुभव ही महत्वपूर्ण नहीं है, वरन् सम्पूर्ण मानवता के अनुभव भी महत्वपूर्ण है। मानव जाति ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का सृजन किया है, जिससे आध्यात्मिक विकास की सम्भावनाएं बढ़ गई हैं। अतः इस आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक सम्पत्ति से छात्र को वंचित करना उचित नहीं है। इस सम्पत्ति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाते रहना शिक्षक का महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए। अतः पाठ्यक्रम निर्धारित करने से पूर्व बालक की आवश्यकताओं को देख लेना चाहिए। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। हमें समाज की आवश्यकताओं को भी देखना है तथा सामाजिक वातावरण पर भी दृष्टि डालनी है।

शिक्षक का स्थानः–

राधाकृष्णन तथा अनय आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षक का स्थान शिक्षण–प्रक्रिया में सर्वोपरि है। शिक्षण प्रक्रिया यांत्रिक नहीं होती, इसमें एक व्यक्ति का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। बालक जो अन्ततः व्यक्ति है– न कि केवल शरीर, उसका विकास प्रभावशाली व्यक्तित्व द्वारा ही सम्भव है। अतः शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए। जन्म के समय बालक में शक्तियां सुषुप्त रहती हैं। शिक्षक का कार्य इन सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करना है। वस्तुतः भारतीय आदर्शवाद में शिक्षक का स्थान बड़ा ऊँचा है। वह छात्र के जीवन का मार्ग दर्शक है, जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला है। उसे सच्चा ज्ञान देने वाला है एवं उसके व्यक्तित्व का निर्माण करने वाला है। वह शिक्षक प्रक्रिया की धुरी है, बिना उसके शिक्षण प्रक्रिया अधूरी है।

राधाकृष्णन के अनुसार एक शिक्षक को अपने छात्रों के समक्ष एक आदर्श रूप में प्रस्तुत होना चाहिए ताकि छात्र उसका अनुकरण कर, उसके गुणों को आत्मसात् कर समाज तथा राष्ट्र के एक उत्तम एवं सक्षम नागरिक बन सकें। वस्तुतः बालकों में आदर्श, लक्ष्य एवं जीवन के मूल्य पहले से ही विद्यमान रहते हैं। अध्यापक का कार्य यह है कि इन मूल्यों के अन्वेषण की ओर छात्रों को प्रवृत्त कर दें। अध्यापक का कार्य–कक्षा में एवं बाहर भी उपयुक्त वातावरण प्रदान करना है, जिससे कि छात्रों की संकल्पशक्ति का विकास हो सके और वे अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें।

शिक्षा और समाजः–

राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज विद्यालय की व्यवस्था करता है, उसका संचालन करता है तथा उसके लिये भौतिक साधन जुटाता है तो बदले में वह यह आशा भी करता है कि विद्यालय में समाज के भावी सदस्य तैयार होंगे, अच्छे नागरिक बनेंगे, समाज के उत्थान के लिये उच्च कोटि के नेता, समाज–सुधारक निकलेंगे और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये औद्योगिक एवं कार्य क्षेत्र में भी कुशल कर्मचारी तैयार करेंगे।

सारांश :–

उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर स्पष्ट है कि राधाकृष्णन एक आदर्शवादी एवं आध्यात्मिक शिक्षाशास्त्री के रूप में शिक्षा को प्रस्तुत करते हुए शिक्षा के द्वारा बालक, परिवार, समाज तथा राष्ट्र का भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास चाहते थे। उनकी शिक्षा नीति प्राचीन भारतीय आदर्शों की पृष्ठभूमि में अंकुरित एवं पल्लवित होकर सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की एक मजबूत आधारशिला तैयार करती है। वस्तुत राधाकृष्णन एक सच्चे मानववादी थे जो शिक्षा के द्वारा मानव का कल्याण चाहते थे और अपने दार्शनिक विश्वासों के माध्यम से भारतीय शिक्षा को सम्पुष्ट करना चाहते थे। एक विस्तृत सीमा तक वे इसमें सफल भी रहे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

Ashe, Geoffrey, Gandhi, a Study in Revolution. Asia Publishing House, Bombay, 1968.

Aurobindo, S., A System of National Education, Calcutta, Arya Publishing House, 1949.

Chakrabarti, Amiya, and others, Ed. Rabindranath. Calcutta, Book Exchange; 1944.

Das, Adhar Chandra, Sri Aurobindo and the Future of Mankind. Calcutta University, 1934.

Datta, D.M., The Philosophy of Mahatma Gandhi. University of Calcutta, 1968.

Dhawan, G.R., The Political Philosophy of Mahatma Gandhi. Navajiwan Publishing House, Ahmedabad.

Langlay, G.H., Sri Aurobindo, Indian Poet, Philosopher and Mystic. David Marlow Ltd., 1949.

Macmunn, Sir George, The Religions and Hidden Cult of India. Sampson Low, Marston and Co., London.

Mahadevan, T.M.P. Ed., Truth and Non-Violence. Unesco Publication, Gandhi Peace Foundation., 1970.

Marlow, A.N., Ed., Radhakrishnan, an Anthology. George Allen and Unwin Ltd., London, 1952.

Morrison, John, New Ideas in India. Macmillan and Co. Ltd., London, 1907.

Mukherji, Hiren, Gandhi, a Study. National Book Agency, Calcutta, 1958.

Narvane, V.S., Modern Indian Thought. Asia Publishing House, Bombay, 1964.